रामचरित्मानस

बालकाण्ड

शिवजी द्वारा सती का त्याग, शिवजी की समाधि

चौपाई :

*** सतीं समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भय बस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥ कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥1॥

भावार्थ:

सतीजी ने श्री रघुनाथजी के प्रभाव को समझकर डर के मारे शिवजी से छिपाव किया और कहा- हे स्वामिन्! मैंने कुछ भी परीक्षा नहीं ली, (वहाँ जाकर) आपकी ही तरह प्रणाम किया॥1॥

*** जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरें मन प्रतीति अति सोई॥ तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना॥2॥

भावार्थ:

आपने जो कहा वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मन में यह बड़ा (पूरा) विश्वास है। तब शिवजी ने ध्यान करके देखा और सतीजी ने जो चरित्र किया था, सब जान लिया॥2॥

*** बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा॥ हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदयँ बिचारत संभु सुजाना॥3॥

भावार्थ:

फिर श्री रामचन्द्रजी की माया को सिर नवाया, जिसने प्रेरणा करके सती के मुँह से भी झूठ कहला दिया। सुजान शिवजी ने मन में विचार किया कि हरि की इच्छा रूपी भावी प्रबल है॥3॥

*** सतीं कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥ जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥4॥

भावार्थ:

सतीजी ने सीताजी का वेष धारण किया, यह जानकर शिवजी के हृदय में बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा कि यदि मैं अब सती से प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्ग लुप्त हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है॥4॥

दोहा :

*** परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु। प्रगटि न कहत महेसु कछु हृदयँ अधिक

संतापु॥56॥

भावार्थ:

सती परम पवित्र हैं, इसलिए इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करने में बड़ा पाप है। प्रकट करके महादेवजी कुछ भी नहीं कहते, परन्तु उनके हृदय में बड़ा संताप है॥56॥

चौपाई :

***तब संकर प्रभु पद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदयँ अस आवा॥ एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं॥1॥

भावार्थ:

तब शिवजी ने प्रभु श्री रामचन्द्रजी के चरण कमलों में सिर नवाया और श्री रामजी का स्मरण करते ही उनके मन में यह आया कि सती के इस शरीर से मेरी (पति-पत्नी रूप में) भेंट नहीं हो सकती और शिवजी ने अपने मन में यह संकल्प कर लिया॥1॥

*** अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा॥ चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई॥2॥

भावार्थ:

स्थिर बुद्धि शंकरजी ऐसा विचार कर श्री रघुनाथजी का स्मरण करते हुए अपने घर(कैलास) को चले। चलते समय सुंदर आकाशवाणी हुई कि हे महेश! आपकी जय हो। आपने भक्ति की अच्छी दृढ़ता की॥2॥

*** अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना॥ सुनि नभगिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा॥3॥

भावार्थ:

आपको छोड़कर दूसरा कौन ऐसी प्रतिज्ञा कर सकता है। आप श्री रामचन्द्रजी के भक्त हैं, समर्थ हैं और भगवान् हैं। इस आकाशवाणी को सुनकर सतीजी के मन में चिन्ता हुई और उन्होंने सकुचाते हुए शिवजी से पूछा-॥3॥

***कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला॥ जदपि सतीं पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती॥4॥

भावार्थ:

हे कृपालु! कहिए, आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो! आप सत्य के धाम और दीनदयालु हैं। यद्यपि सतीजी ने बहुत प्रकार से पूछा, परन्तु त्रिपुरारि शिवजी ने कुछ न कहा॥4॥

दोहा :

*** सतीं हृदयँ अनुमान किय सबु जानेउ सर्बग्य। कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य॥57 क॥

भावार्थ:

सतीजी ने हृदय में अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिवजी सब जान गए। मैंने शिवजी से कपट किया, स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख और बेसमझ होती है॥57 (क)॥

सोरठा :

*** जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि। बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥57 ख॥

भावार्थ:

प्रीति की सुंदर रीति देखिए कि जल भी (दूध के साथ मिलकर) दूध के समान भाव बिकता है, परन्तु फिर कपट रूपी खटाई पड़ते ही पानी अलग हो जाता है (दूध फट जाता है) और स्वाद (प्रेम) जाता रहता है॥57 (ख)॥

चौपाई :

*** हृदयँ सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी॥ कृपासिंधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा॥1॥

भावार्थ:

अपनी करनी को याद करके सतीजी के हृदय में इतना सोच है और इतनी अपार चिन्ता है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। (उन्होंने समझ लिया कि) शिवजी कृपा के परम अथाह सागर हैं। इससे प्रकट में उन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा॥1॥

*** संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदयँ अकुलानी॥ निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपइ अवाँ इव उर अधिकाई॥2॥

भावार्थ:

शिवजी का रुख देखकर सतीजी ने जान लिया कि स्वामी ने मेरा त्याग कर दिया और वे हृदय में व्याकुल हो उठीं। अपना पाप समझकर कुछ कहते नहीं बनता, परन्तु हृदय (भीतर ही भीतर) कुम्हार के आँवे के समान अत्यन्त जलने लगा॥2॥

*** सतिहि ससोच जानि बृषकेतू। कहीं कथा सुंदर सुख हेतू॥ बरनत पंथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा॥3॥

भावार्थ:

वृषकेतु शिवजी ने सती को चिन्तायुक्त जानकर उन्हें सुख देने के लिए सुंदर कथाएँकहीं। इस प्रकार मार्ग में विविध प्रकार के इतिहासों को कहते हुए विश्वनाथकैलास जा पहुँचे॥3॥

*** तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन॥ संकर सहज सरूपु सम्हारा। लागि समाधि अखंड अपारा॥4॥

भावार्थ:

वहाँ फिर शिवजी अपनी प्रतिज्ञा को याद करके बड़ के पेड़ के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गए।

शिवजी ने अपना स्वाभाविक रूप संभाला। उनकी अखण्ड और अपार समाधि लग गई॥4॥

दोहा :

***सती बसहिं कैलास तब अधिक सोचु मन माहिं। मरमु न कोऊ जान कछु जुग सम दिवस सिराहिं॥58॥

भावार्थ:

तब सतीजी कैलास पर रहने लगीं। उनके मन में बड़ा दुःख था। इस रहस्य को कोई कुछ भी नहीं जानता था। उनका एक-एक दिन युग के समान बीत रहा था॥58॥

चौपाई :

*** नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहउँ दुख सागर पारा॥ मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पतिबचनु मृषा करि जाना॥1॥

भावार्थ:

सतीजी के हृदय में नित्य नया और भारी सोच हो रहा था कि मैं इस दुःख समुद्र के पार कब जाऊँगी। मैंने जो श्री रघुनाथजी का अपमान किया और फिर पति के वचनों को झूठ जाना-॥1॥

*** सो फलु मोहि बिधाताँ दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा॥ अब बिधि अस बूझिअ नहिं तोही। संकर बिमुख जिआवसि मोही॥2॥

भावार्थ:

उसका फल विधाता ने मुझको दिया, जो उचित था वही किया, परन्तु हे विधाता! अब तुझे यह उचित नहीं है, जो शंकर से विमुख होने पर भी मुझे जिला रहा है॥2॥

*** कहि न जाइ कछु हृदय गलानी। मन महुँ रामहि सुमिर सयानी॥ जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥3॥

भावार्थ:

सतीजी के हृदय की ग्लानि कुछ कही नहीं जाती। बुद्धिमती सतीजी ने मन में श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण किया और कहा- हे प्रभो! यदि आप दीनदयालु कहलाते हैं और वेदों ने आपका यह यश गाया है कि आप दुःख को हरने वाले हैं, ॥3॥

*** तौ मैं बिनय करउँ कर जोरी। छूटउ बेगि देह यह मोरी॥ जौं मोरें सिव चरन सनेहू। मन क्रम बचन सत्य ब्रतु एहू॥4॥

भावार्थ:

तो मैं हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मेरी यह देह जल्दी छूट जाए। यदि मेराशिवजी के चरणों में प्रेम है और मेरा यह (प्रेम का) व्रत मन, वचन और कर्म (आचरण) से सत्य है,॥4॥

दोहा :

*** तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु करउ सो बेगि उपाइ। होइ मरनु जेहिं बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाइ॥59॥

भावार्थ:

तो हे सर्वदर्शी प्रभो! सुनिए और शीघ्र वह उपाय कीजिए, जिससे मेरा मरण हो और बिना ही परिश्रम यह (पति-परित्याग रूपी) असह्य विपत्ति दूर हो जाए॥59॥

चौपाई :

*** एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी॥ बीतें संबत सहस सतासी। तजी समाधि संभु अबिनासी॥1॥

भावार्थ:

दक्षसुता सतीजी इस प्रकार बहुत दुःखित थीं, उनको इतना दारुण दुःख था कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सत्तासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनाशी शिवजी ने समाधि खोली॥1॥

***राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सतीं जगतपति जागे॥ जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा॥2॥

भावार्थ:

शिवजी रामनाम का स्मरण करने लगे, तब सतीजी ने जाना कि अब जगत के स्वामी (शिवजी) जागे। उन्होंने जाकर शिवजी के चरणों में प्रणाम किया। शिवजी ने उनको बैठने के लिए सामने आसन दिया॥2॥

*** लगे कहन हरि कथा रसाला। दच्छ प्रजेस भए तेहि काला॥ देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक॥3॥

भावार्थ:

शिवजी भगवान हरि की रसमयी कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्ष प्रजापति हुए। ब्रह्माजीने सब प्रकार से योग्य देख-समझकर दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया॥3॥

*** बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिनामु हृदयँ तब आवा॥ नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥4॥

भावार्थ:

जब दक्ष ने इतना बड़ा अधिकार पाया, तब उनके हृदय में अत्यन्त अभिमान आ गया। जगत में ऐसा कोई नहीं पैदा हुआ, जिसको प्रभुता पाकर मद न हो॥4॥

सती का दक्ष यज्ञ में जाना

दोहा :

*** दच्छ लिए मुनि बोलि सब करन लगे बड़ जाग। नेवते सादर सकल सुर जे पावतमख भाग॥60॥

भावार्थ:

दक्ष ने सब मुनियों को बुला लिया और वे बड़ा यज्ञ करने लगे। जो देवता यज्ञ का भाग पाते हैं, दक्ष ने उन सबको आदर सहित निमन्त्रित किया॥60॥

चौपाई :

*** किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा॥ बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई॥1॥

भावार्थ:

(दक्ष का निमन्त्रण पाकर) किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व और सब देवता अपनी-अपनी स्त्रियों सहित चले। विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजी को छोड़कर सभी देवता अपना-अपना विमान सजाकर चले॥1॥

*** सतीं बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुंदर बिधि नाना॥ सुर सुंदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना॥2॥

भावार्थ:

सतीजी ने देखा, अनेकों प्रकार के सुंदर विमान आकाश में चले जा रहे हैं, देव-सुन्दरियाँ मधुर गान कर रही हैं, जिन्हें सुनकर मुनियों का ध्यान छूट जाता है॥2॥

*** पूछेउ तब सिवँ कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी॥ जौं महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं॥3॥

भावार्थ:

सतीजी ने (विमानों में देवताओं के जाने का कारण) पूछा, तब शिवजी ने सब बातें बतलाईं। पिता के यज्ञ की बात सुनकर सती कुछ प्रसन्न हुईं और सोचने लगीं कियदि महादेवजी मुझे आज्ञा दें, तो इसी बहाने कुछ दिन पिता के घर जाकर रहूँ॥3॥

*** पति परित्याग हृदयँ दुखु भारी। कहइ न निज अपराध बिचारी॥ बोली सती मनोहर बानी। भय संकोच प्रेम रस सानी॥4॥

भावार्थ:

क्योंकि उनके हृदय में पति द्वारा त्यागी जाने का बड़ा भारी दुःख था, पर अपना अपराध समझकर वे कुछ कहती न थीं। आखिर सतीजी भय, संकोच और प्रेमरस में सनी हुई मनोहर वाणी से बोलीं- ॥4॥

दोहा :

*** पिता भवन उत्सव परम जौं प्रभु आयसु होइ। तौ मैं जाउँ कृपायतन सादर देखन सोइ॥61॥

भावार्थ:

हे प्रभो! मेरे पिता के घर बहुत बड़ा उत्सव है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपाधाम! मैं आदर सहित उसे देखने जाऊँ॥61॥

चौपाई :

*** कहेहु नीक मोरेहूँ मन भावा। यह अनुचित नहिं नेवत पठावा॥ दच्छ सकल निज सुता बोलाईं। हमरें बयर तुम्हउ बिसराईं॥1॥

भावार्थ:

शिवजी ने कहा- तुमने बात तो अच्छी कही, यह मेरे मन को भी पसंद आई पर उन्होंने न्योता नहीं भेजा, यह अनुचित है। दक्ष ने अपनी सब लड़कियों को बुलाया है, किन्तु हमारे बैर के कारण उन्होंने तुमको भी भुला दिया॥1॥

*** ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना॥ जौं बिनु बोलें जाहु भवानी। रहइ न सीलु सनेहु न कानी॥2॥

भावार्थ:

एक बार ब्रह्मा की सभा में हम से अप्रसन्न हो गए थे, उसी से वे अब भी हमारा अपमान करते हैं। हे भवानी! जो तुम बिना बुलाए जाओगी तो न शील-स्नेह ही रहेगा और न मान-मर्यादा ही रहेगी॥2॥

*** जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा। जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा॥ तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई॥3॥

भावार्थ:

यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाए भी जाना चाहिए तो भी जहाँ कोई विरोध मानता हो, उसके घर जाने से कल्याण नहीं होता॥3॥

*** भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा॥ कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाएँ। नहिं भलि बात हमारे भाएँ॥4॥

भावार्थ:

शिवजी ने बहुत प्रकार से समझाया, पर होनहारवश सती के हृदय में बोध नहीं हुआ। फिर शिवजी ने कहा कि यदि बिना बुलाए जाओगी, तो हमारी समझ में अच्छी बात न होगी॥4॥

दोहा :

*** कहि देखा हर जतन बहु रहइ न दच्छकुमारि। दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि॥62॥

भावार्थ:

शिवजी ने बहुत प्रकार से कहकर देख लिया, किन्तु जब सती किसी प्रकार भी नहीं रुकीं, तब त्रिपुरारि महादेवजी ने अपने मुख्य गणों को साथ देकर उनको बिदा कर दिया॥62॥

चौपाई :

*** पिता भवन जब गईं भवानी। दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी॥ सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥1॥

भावार्थ:

भवानी जब पिता (दक्ष) के घर पहुँची, तब दक्ष के डर के मारे किसी ने उनकी आवभगत नहीं की, केवल एक माता भले ही आदर से मिली। बहिनें बहुत मुस्कुराती हुई मिलीं॥1॥

*** दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकी जरे सब गाता॥ सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहूँ न दीख संभु कर भागा॥2॥

भावार्थ:

दक्ष ने तो उनकी कुछ कुशल तक नहीं पूछी, सतीजी को देखकर उलटे उनके सारे अंग जल उठे। तब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ कहीं शिवजी का भाग दिखाई नहीं दिया॥2॥

*** तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ॥ पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा। जस यह भयउ महा परितापा॥3॥

भावार्थ:

तब शिवजी ने जो कहा था, वह उनकी समझ में आया। स्वामी का अपमान समझकर सती का हृदय जल उठा। पिछला (पति परित्याग का) दुःख उनके हृदय में उतना नहीं व्यापा था, जितना महान् दुःख इस समय (पति अपमान के कारण) हुआ॥3॥

*** जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब तें कठिन जाति अवमाना॥ समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननीं कीन्ह प्रबोधा॥4॥

भावार्थ:

यद्यपि जगत में अनेक प्रकार के दारुण दुःख हैं, तथापि, जाति अपमान सबसे बढ़कर कठिन है। यह समझकर सतीजी को बड़ा क्रोध हो आया। माता ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया-बुझाया॥4॥

पति के अपमान से दुःखी होकर सती का योगाग्नि से जल जाना, दक्ष यज्ञ विध्वंस

दोहा :

*** सिव अपमानु न जाइ सहि हृदयँ न होइ प्रबोध। सकल सभहि हठि हटकि तब बोलीं बचन सक्रोध॥63॥

भावार्थ:

परन्तु उनसे शिवजी का अपमान सहा नहीं गया, इससे उनके हृदय में कुछ भी प्रबोध नहीं हुआ। तब वे सारी सभा को हठपूर्वक डाँटकर क्रोधभरे वचन बोलीं-॥63॥

चौपाई :

*** सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन्ह संकर निंदा॥ सो फलु तुरत लहब सब काहूँ। भली भाँति पछिताब पिताहूँ॥1॥

भावार्थ:

हे सभासदों और सब मुनीश्वरो! सुनो। जिन लोगों ने यहाँ शिवजी की निंदा की या सुनी है, उन

सबको उसका फल तुरंत ही मिलेगा और मेरे पिता दक्ष भी भलीभाँति पछताएँगे॥1॥

*** संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा॥ काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई॥2॥

भावार्थ:

जहाँ संत, शिवजी और लक्ष्मीपति श्री विष्णु भगवान की निंदा सुनी जाए, वहाँ ऐसी मर्यादा है कि यदि अपना वश चले तो उस (निंदा करने वाले) की जीभ काट लें और नहीं तो कान मूँदकर वहाँ से भाग जाएँ॥2॥

***जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी॥ पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥3॥

भावार्थ:

त्रिपुर दैत्य को मारने वाले भगवान महेश्वर सम्पूर्ण जगत की आत्मा हैं, वे जगत्पिता और सबका हित करने वाले हैं। मेरा मंदबुद्धि पिता उनकी निंदा करता है और मेरा यह शरीर दक्ष ही के वीर्य से उत्पन्न है॥3॥

*** तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद्रमौलि बृषकेतू॥ अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा॥4॥

भावार्थ:

इसलिए चन्द्रमा को ललाट पर धारण करने वाले वृषकेतु शिवजी को हृदय में धारण करके मैं इस शरीर को तुरंत ही त्याग दूँगी। ऐसा कहकर सतीजी ने योगाग्नि में अपना शरीर भस्म कर डाला। सारी यज्ञशाला में हाहाकार मच गया॥4॥

दोहा :

*** सती मरनु सुनि संभु गन लगे करन मख खीस। जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्हि मुनीस॥64॥ ॥

भावार्थ:

सती का मरण सुनकर शिवजी के गण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ विध्वंस होते देखकर मुनीश्वर भृगुजी ने उसकी रक्षा की॥64॥

चौपाई :

*** समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोप पठाए॥ जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥1॥

भावार्थ:

ये सब समाचार शिवजी को मिले, तब उन्होंने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। उन्होंने वहाँ जाकर यज्ञ विध्वंस कर डाला और सब देवताओं को यथोचित फल (दंड) दिया॥1॥

*** भै जगबिदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई॥ यह इतिहास सकल जग

जानी। ताते मैं संछेप बखानी॥2॥

भावार्थ:

दक्ष की जगत्प्रसिद्ध वही गति हुई, जो शिवद्रोही की हुआ करती है। यह इतिहास सारा संसार जानता है, इसलिए मैंने संक्षेप में वर्णन किया॥2॥ **अगला पेज...**

रामचरित्मानस

बालकाण्ड